THE ECONOMIC TIMES

Date:27-04-24

Welcome to the Great Indian Indoors

More care, money being invested in our homes

ET Editorials

A new breed of upper middle-class buyers has emerged that is scaling up demand for premium housing across the country. India's housing market remained subdued in a decade till Covid struck, which brought home the need for better living conditions to white-collar workers who had moved ahead in the affordability race. The pandemic underscored the need for larger spaces where family members could get on with their daily routines without getting in each other's way. This trend has endured post-pandemic and houses have become larger in gated communities, with an expanding list of add-on features for work and living.

This changes the country's property market because the feature sets most in demand are unavailable in city centres, and move to the suburbs is adding to the boom in commuter car-buying. The complementary demand for upscale houses and cars soaks up a big chunk of premiumisation of consumption in the country that is driving a retail credit boom and feeding India's economic recovery amidst aturbulent external environment. The trend is catching on in smaller cities that are witnessing asurge in growth as economic activity radiates outwards from India's infrastructure-challenged metropolises. Permanent changes are underway across the country about what middle-class Indians expect from interiors of their homes and their neighbourhoods.

Greater value addition to India's housing stock has favourable multiplier effects. The median age of the population is approaching the point when demand for new housing peaks and the property market seems set for a sustained boom. Rising real income levels in the top consuming classes and an acceleration in urbanisation on improved connectivity are additional drivers. Property developers, too, are seeking better margins through premium features in areas with lower land prices. Premiumisation is actually bringing India's housing market closer to equilibrium by opening up cheap land parcels to urbanisation. The same holds for items and services — such as tech devices, appliances and furnishings — in this new boom in India's burgeoning indoors.

THE HINDU

Date:29-04-24

Towards green growth

The RBI must assess the impact of climate change on economic stability.

Editorial

A notable feature of the Reserve Bank of India's (RBI's) latest Monetary Policy Report (included in its April Bulletin) is the primacy given to "extreme weather events" and "climate shocks" affecting not only food inflation but also likely having a broader impact on the natural rate of interest, thereby influencing the economy's financial stability. Natural, or neutral, rate of interest refers to the central bank's monetary policy lever, which allows it to maintain maximum economic output, while keeping a check on inflation. The report mentions a "New-Keynesian model that incorporates a physical climate risk damage function" being used to estimate the "counterfactual macroeconomic impact of climate change vis-à-vis a no climate change scenario". The report's authors go on to warn that the "long-term (economic) output" could be lower by around 9% by 2050 in the absence of any climate mitigation policies. They ominously add that 'if inflation hysteresis gets entrenched, it may lead to a de-anchoring of inflation expectations, and the undermining of the central bank's credibility would warrant higher interest rates to curb inflation, leading to greater output loss'.

Beginning with its July 2022 discussion paper on 'climate risk and sustainable finance', the RBI has made incremental progress to address the transition to a green economy, even while admitting that India requires over $17 trillion to achieve its net zero ambitions by 2070. Its peers in advanced economies, most notably the European Central Bank, have aided the formulation of a green taxonomy for the entire Eurozone's economic value chain. A green taxonomy is a framework to assess the sustainability credentials and possible ranking of an economic activity. The RBI and the Finance Ministry could take inspiration from the developing world, especially the ASEAN region, where a layered green taxonomy as a living document keeps getting updated with sectoral views of possible sustainable trajectories. While the issuance of ₹16,000 crore worth of Sovereign Green Bonds and expanding the resource pool by allowing Foreign Institutional Investors to participate in future green government securities are welcome steps, the RBI must undertake a thorough-going assessment on the quantitative and qualitative impact on economic and financial stability due to climate change. It must encourage administrative consultation to begin populating a layered green taxonomy that is reflective of India's fragmented developmental trajectories. The effort should be to mitigate the transitional risks to the financial system as the economy moves towards a sustainable future.

दैनिक जागरण

Date:29-04-24

विरासत कर का बेतुका विचार

विवेक देवराय और आदित्य सिन्हा, (देवराय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के प्रमुख और सिन्हा परिषद में ओएसडी-अनुसंधान हैं)

स्वतंत्रता के बाद से भारत में समाजवादी सोच के चलते संपदा सृजन को एक समस्या के रूप में देखा गया। समय-समय पर विशेष रूप से चुनावों के दौरान संपदा सृजन को नियंत्रित किए जाने के विचार सामने आते रहते हैं। इसी कड़ी में विरासत कर को लेकर एक बार फिर बहस छिड़ी है। यह स्थिति तब है जब संपदा सृजन को आर्थिक वृद्धि एवं नवाचार का उत्प्रेरक माना जाता है, जिससे लोगों का जीवन स्तर सुधरता है। इसलिए उसे गलत रूप में पेशकर भयादोहन नहीं किया जाना चाहिए। जब व्यक्तिगत एवं संस्थागत दायरे में संपदा सृजन होता है तो उसके पुनर्निवेश से रोजगार सृजन एवं तकनीकी प्रगति की राह खुलती है। इस चक्र से नए उद्योगों की वृद्धि, रोजगार सृजन में बढ़ोतरी और ऊंचे कर राजस्व के जरिये बेहतर सार्वजनिक सेवाएं सुनिश्चित होती हैं। संपदा सृजन के माध्यम से ही निम्न-आय पृष्ठभूमि के लोगों के लिए ऊंचे वेतन वाली नौकरियों की राह खुलती है तो सफल उद्यमियों को शैक्षणिक गतिविधियों एवं सामुदायिक परियोजनाओं में निवेश के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इससे सामाजिक व्यवस्था गतिमान रहती है। स्थानीय विकास और सशक्तीकरण से उपलब्धियों एवं उद्यमिता की प्रगतिशील संस्कृति का भी विकास होता है।

समय के साथ भारत ने व्यापक आर्थिक प्रगति की है और इस प्रक्रिया में कुछ विषमता की स्थिति भी उत्पन्न हुई है, जिसे दूर करने के लिए गाहे-बगाहे विरासत कर का सुझाव दिया जाता है। इतिहास गवाह है कि मध्य वर्ग और गरीबों के उत्थान के लिए लाई जाने वाली ऐसी नीतियां अंतत: उनका अहित ही करती हैं। ऐसे कदमों से जनजीवन अस्तव्यस्त होता है और आर्थिक अक्षमता बढ़ सकती है। ऐसे में स्पष्ट है कि चुनावों के बीच इस प्रकार का विचार उछालने वालों की मंशा वास्तविक आर्थिक सुधारों के बजाय राजनीतिक लाभ उठाने की अधिक लगती है। वैसे भी विरासत कर का विचार भारत में नया नहीं है। आजादी के बाद से ही भारत में इसी प्रकार की एस्टेट ड्यूटी लागू हुई, जिसे मार्च 1985 में हटाना पड़ा। इसे हटाने के पीछे यही वजह बताई गई कि इससे राजस्व की तो बहुत कम प्राप्ति हुई, लेकिन यह एक बड़ी संख्या में करदाताओं के उत्पीड़न का कारण बना। यह ड्यूटी कम से कम एक लाख रुपये हैसियत की संपत्ति पर लगाई गई थी, जिसके लिए 7.5 प्रतिशत की दर नियत थी। हालांकि 20 लाख रुपये से अधिक की संपत्ति पर इसकी दर 85 प्रतिशत के स्तर तक पहुंचती थी, जिसके चलते यह दांव जनता की नजरों में खटकने लगा। केंद्र के प्रत्यक्ष कर संग्रह में एस्टेट टैक्स संग्रह की हिस्सेदारी भी बेहद मामूली थी। वित्त वर्ष 1984-85 के दौरान एस्टेट ड्यूटी के तहत कुल 20 करोड़ रुपये का राजस्व मिला। चूंकि इस कर के आकलन की प्रक्रिया खासी जटिल थी और उसमें तमाम मुकदमेबाजी के पेच भी फंस जाते थे तो इसकी वसूली सरकार को खासी महंगी पड़ती थी। जिस समय यह ड्यूटी हटाई गई तब देश में राजीव गांधी की सरकार थी। उनकी सरकार में वित्त मंत्री रहे विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इसे लेकर अपने बजट भाषण में कहा, 'एस्टेट ड्यूटी से जहां केवल 20 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई, वहीं इसके अनुपालन पर काफी प्रशासनिक व्यय करना पड़ा।' अंतत: 16 मार्च, 1985 की अवधि के उपरांत इसकी समाप्ति की घोषणा हुई।

विरासत कर अक्सर आर्थिक अक्षमताओं को भी आमंत्रित करता है, जिसके कई मोर्चों पर अनपेक्षित परिणाम सामने आते हैं। इस प्रकार के कर से लोगों का आर्थिक व्यवहार बिगड़ सकता है। विरासत कर जैसी व्यवस्था में लोग बचत या निवेश से अधिक उपभोग की ओर उन्मुख हो सकते हैं। विरासत कर की अतिरिक्त लागत भी करदाताओं का मिजाज बिगाड़ती है। साक्ष्य यही दर्शाते हैं कि ऊंचे एस्टेट टैक्स संपदा सृजन की राह में बाधक बनते हैं, जिससे आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक पूंजी निर्माण प्रभावित होता है। इसके विरोध में एक तर्क दोहरे कराधान का भी है, क्योंकि विरासत कर के दायरे में आने वाली परिसंपत्तियां पहले ही आयकर या पूंजीगत लाभ कर के दायरे में आ चुकी होती हैं। यदि सक्षमता की दृष्टि से देखें तो ऐसे परिदृश्य में कोष की सीमांत सक्षमता लागत यानी एमईएसएफ काफी ऊंची हो सकती है। यह संकेत करता है कि जिन करों को एक बार ही अधिरोपित किया जाता है, उनसे राजस्व वसूली किफायती होती है। छोटे उद्यमों और पारिवारिक स्वामित्व वाली इकाइयों के मामले में विरासत कर के चलते तरलता की समस्या भी खड़ी हो जाती है। चूंकि ऐसी इकाइयों के पास वृहद कर देनदारियों की पूर्ति के लिए आवश्यक लिक्विड असेट्स का अभाव होता है तो उन्हें अपनी उत्पादक परिसंपत्तियों की बिक्री या उन्हें पूरी तरह भुनाने पर मजबूर होना पड़ता है। इससे स्थापित उद्यमों का पूरा ढांचा बिगड़ सकता है, जिससे रोजगार और आर्थिक विविधता के समक्ष खतरा उत्पन्न होने का जोखिम बढ़ जाता है।

ऊंचा विरासत कर पूंजी पलायन को भी गति दे सकता है। इसके चलते लोग अपनी पूंजी को वहां लगाना चाहेंगे जहां करों को लेकर अनुकूल व्यवस्था हो। इससे देश का कर दायरा सिकुड़ने के साथ ही घरेलू निवेश घट सकता है, जिससे संसाधन आवंटन की स्थिति गडबड़ा सकती है। विरासत कर के पेचीदा अनुपालन एवं जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया से भी यह फायदे से अधिक नुकसान करता है और संभावित राजस्व प्राप्ति नगण्य रह सकती है। भारत जैसे विविधतापूर्ण और अधिकांश मामलों में परिसंपत्तियों के असंगठित स्वरूप वाले देश में विरासत कर को लागू करने की अपनी तमाम चुनौतियां हैं। रियल एस्टेट, ज्वैलरी और कृषि भूमि जैसी संपत्तियों की व्यापकता प्रभावी कराधान व्यवस्था के लिए आवश्यक मूल्यांकन को जटिल बनाती है। विरासत कर के आकलन के लिए संपत्तियों का सटीक रिकार्ड बहुत आवश्यक है, जिसका भारत में अभाव है। आंकड़े डिजिटल भी नहीं हैं। इससे यह प्रक्रिया और जटिल हो जाएगी। कुल मिलाकर, जिस विषमता को दूर करने के लिए विरासत कर का विचार आगे बढ़ाया जाता है उससे जाने-अनजाने विषमता और बढ़ती ही है। धनाढ्य लोग बेहतर कर नियोजन के साथ अक्सर इस प्रकार के करों के प्रभाव को कुछ कम करने या उससे बच निकलते हैं, जबकि अपेक्षाकृत कम संसाधनसंपन्न लोगों को उसकी तपिश झेलनी पड़ती है।

जनसत्ता

Date:29-04-24

पिघलते हिमनद पर तैरते खतरे

प्रमोद भार्गव

जलवायु परिवर्तन के संकेत अब स्पष्ट दिखने लगे हैं। नए शोध बताते हैं कि अंटार्कटिका से हिमखंड टूट रहे हैं, तापमान बढ़ने से बर्फ भी तेजी से पिघल रही है। जलवायु परिवर्तन का बड़ा संकेत संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) में दिखा है। पिछले दिनों बीते पचहत्तर वर्षों में यहां सबसे अधिक बारिश दर्ज की गई है। चौबीस घंटे में दस इंच से ज्यादा हुई इस बारिश ने रेगिस्तान के बड़े भू-भाग को दरिया में बदल दिया। दुनिया का सबसे व्यस्त दुबई अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा जलाशय बन गया। उधर, 1986 में अंटार्कटिका से टूट कर अलग हुआ जो हिमखंड स्थिर बना हुआ था, वह अब समुद्री सतह पर बहने लगा है। उपग्रह से लिए गए चित्रों से पता चला है कि करीब एक लाख करोड़ टन वजनी यह हिमखंड अब तेज हवाओं और जल धाराओं के चलते अंटार्कटिका के उत्तरी सिरे की ओर बढ़ रहा है। यह हिमखंड करीब चार हजार वर्ग किमी में फैला हुआ है, आकार में यह मुंबई के क्षेत्रफल 603 वर्ग किमी से करीब छह गुना बड़ा है। इसकी ऊंचाई 400 मीटर है। यह जिस महानगर की सीमा से टकराएगा, वहां प्रलय आ जाएगा।

उत्तरी ध्रुव यानी आर्कटिक पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को लेकर लगातार अध्ययन हो रहे हैं। ये अध्ययन विशाल आकार के हिमखंडों के पिघलने, टूटने, दरारें पड़ने, पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के खिसकने, ध्रुवीय भालुओं के मानव आबादियों में घुसने और सील मछलियों में कमी, ऐसे प्राकृतिक संकेत हैं, जिनसे पृथ्वी के बढ़ते तापमान का आर्कटिक पर प्रभाव स्पष्ट होता है। पर्यावरण विज्ञानी इस बदलाव को समुद्री जीवों, जहाजों, पेंगुइन, छोटे द्वीपों और महानगरों के लिए एक बड़े खतरे के रूप में देख रहे हैं। अमेरिका के 'नेशनल स्नो एंड साइंस डाटा सेंटर' के अध्ययन को सत्य मानें तो वर्ष 2014 में ही उत्तरी ध्रुव के 32.90 लाख वर्ग किमी क्षेत्र में बर्फ की परत पिघली है। यह क्षेत्रफल लगभग भारत-भूमि के बराबर है। इस संस्थान के अनुसार 1979 में उत्तरी ध्रुव पर बर्फ जितनी कठोर थी, अब नहीं रह गई है। इसके ठोस हिमतल में चालीस फीसद की कमी आई है।

क्षेत्रफल के हिसाब से अंटार्कटिका पांचवां सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह दक्षिणी गोलार्ध में करीब बीस फीसद हिस्से को अपनी बर्फीली चादर से ढके हुए है। इसमें दक्षिणी ध्रुव भी समाहित है। उत्तरी ध्रुव का कुल क्षेत्रफल 2.1 करोड़ वर्ग किमी है। इसमें से 1.30 करोड़ वर्ग किमी क्षेत्र की सतह बर्फ की मोटी परत से ढकी हुई है। बर्फ से आच्छादित होने के कारण यहां का औसत तापमान ऋणात्मक 10 डिग्री सेल्सियस है। जाड़ों में यह 68 डिग्री तक ऋणात्मक हो जाता है। बर्फ से ढके इसी क्षेत्र को आर्कटिक महासागर कहा जाता है।

आमतौर पर आर्कटिक का उल्लेख उस भाग के परिप्रेक्ष्य में होता है, जो उत्तरी ध्रुव को घेरे हुए है। आर्कटिक का भू-क्षेत्र रूस के साइबेरिया के किनारों, आइसलैंड, ग्रीनलैंड, उत्तरी डेनमार्क, नार्वे, फिनलैंड, स्वीडन, अमेरिका, अलास्का, कनाडा का अधिकांश उत्तरी महाद्वीपीय भाग और आर्कटिक टापुओं के समुदाय तथा अन्य अनेक द्वीपों तक फैला है। औद्योगिक विकास के लिए खनिज संपदा की लूट के लिए यहां व्यापारिक गतिविधियां तेज हुई हैं। इस क्षेत्र में तेल, प्राकृतिक गैस और कोयला के अकूत भंडार हैं। इस कारण यहां पारिस्थितिकी तंत्र गड़बड़ाने लगा है। नतीजतन, यहां पाए जाने वाले जलीय और थलीय जीव ध्रुवीय भालू, सील, बैल्गा वेल, नर वेल, नीली वेल और वेलर्स के अस्तित्व का संकट पैदा हो गया है।

उत्तरी ध्रुव हमारे पृथ्वी ग्रह का सबसे सुंदर उत्तरी बिंदु है। मान्यता है कि यहीं पर पृथ्वी की धुरी घूमती है। यह स्थल आर्कटिक महासागर में स्थित है। यहां अत्यधिक ठंड पड़ती है, क्योंकि छह माह तक सूर्य लुप्त रहता है। यहां हमेशा सफेद बर्फीली चादर बिछी रहती है। इस भौगोलिक उत्तरी ध्रुव के निकट ही, चुंबकीय उत्तरी ध्रुव है। इसी चुंबकीय शक्ति से आकर्षित होकर कंपास की सुई दिशा-संकेत देती है। उत्तरी तारा या 'ध्रुवतारा' उत्तरी ध्रुव के आकाश पर निरंतर चमकता दिखाई देता है। शताब्दियों से नाविक इसी तारे को देखकर यह अनुमान लगाते रहे हैं कि वे उत्तर से कितनी दूर हैं। यह क्षेत्र आर्कटिक परिधि भी कहलाता है। क्योंकि यहां अर्धरात्रि के सूर्य (मिडनाइट सन) और ध्रुवीय रात (पोलर नाइट) का अद्वितीय दृश्य देखने को मिलता है। दुनिया की नब्बे फीसद बर्फ इसी अंटार्कटिका में जमी हुई है। इसलिए इसे पृथ्वी का शीतालय (फ्रिज) भी कहा जाता है।

यहां की बर्फीली परतों में धरती को मिलने वाला सबसे अधिक मात्रा में पानी संग्रहित है। लेकिन अब बढ़ते तापमान और बढ़ती मानवीय गतिविधियों के चलते आर्कटिक और ग्रीनलैंड में निरंतर बर्फ पिघल रही है। शोध बताते हैं कि इस प्रायद्वीप में चारों ओर तैरने वाली बर्फ में दस फीसद की कमी आई है। बर्फीली बारिश होने के बाद भी बर्फ न्यूनतम मात्रा में जम रही है। 2022 की तुलना में 2023 में बर्फ बहुत कम जमी है।

जलवायु परिवर्तन के अनेक दुष्परिणाम देखने में आ रहे हैं। इनमें से एक उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों में पृथ्वी पर बढ़ते तापमान के चलते बर्फ का पिघलना भी है। अत्यधिक गर्मी या सर्दी पड़ना भी इसी के कारक माने जा रहे हैं। वैज्ञानिकों की यह चिंता तब और ज्यादा बढ़ गई, जब अंटार्कटिका में तैर रहे हिमनद (ग्लेशियर) टाटेन के पिघलने की जानकारी अनुमानों से कहीं ज्यादा निकली। इससे समुद्र का जलस्तर बढ़ने की भी आशंका जताई जा रही है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय के पाल बिनबेरी द्वारा किए गए एक अध्ययन रपट के मुताबिक, 'अध्ययन से पहले हमें लगता था कि टाटेन हिमखंड की बर्फ स्थिर है। लेकिन जलवायु परिवर्तन के असर के चलते इसकी स्थिरता में बदलाव आ रहा है और तेजी से पिघल रहा है। यह सबसे तेज गति से चलायमान हिमखंड है। इसके पिघलने के खतरे ज्यादा हैं, क्योंकि यह अगर अधिक तापमान वाले क्षेत्र में पहुंच गया तो और ज्यादा तीव्रता से पिघलेगा।

अगर अंटार्कटिका की बर्फ इसी तरह पिघलती रही तो दक्षिणी महासागर के चारों ओर समुद्री जल स्तर बढ़ेगा, इस कारण अन्य समुद्रों पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है। इन समुद्रों का जल स्तर बढ़ा, तो पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध पर भी इसका असर दिखाई देगा। बर्फ के पिघलने से वायुमंडलीय परिसंचरण का स्वभाव भी बदल जाता है। अंटार्कटिका के ईद-गिर्द ही दक्षिणी महासागर फैला हुआ है। धरती पर उत्सर्जित होने वाले कार्बन डाइआक्साइड की सबसे बड़ी मात्रा को सोखने का काम यही महासागर करता है। वर्ष भर में जितना कार्बन उत्सर्जित होता है, उसका लगभग बारह फीसद यह सागर सोख लेता है। लेकिन ऐसा तभी संभव हो पाता है, जब अंटार्कटिका की बर्फ बनी रहे। अब वह समय आ गया है कि धरती के बढ़ते तापमान को युद्ध स्तर पर नियंत्रित करने के कारगर उपाय हों।

राष्ट्रीय सहारा

Date:29-04-24

चुनावी रेवड़ी से बचना होगा

सतीश सिंह

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (आरबीआई) के पूर्व गवर्नर डी सुब्बाराव ने फ्रीबीज (मुफ्त उपहार) या रेवड़ी संस्कृति की नीति से सरकार को बचने की सलाह दी है क्योंकि राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए वोटरों को मुफ्त बिजली - पेयजल, बेरोजगारों को मासिक भत्ता, लैपटॉप, स्मार्टफोन, साइकिल आदि देने का लालच देकर अपने पक्ष में वोट देने के लिए प्रेरित करते हैं, और सत्ता में आने के बाद वादों को पूरा करने के लिए सरकारी खजाने को खाली कर देते हैं, जिससे राज्य और केंद्र सरकार का वित्तीय अनुशासन नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है, और फ्रीबीज पर पैसे खर्च किए जाने के कारण विकासात्मक कार्यों को धक्का लगता है अर्थात सड़क, स्कूल, अस्पताल, बिजली, पानी आदि की व्यवस्था सरकार नहीं कर पाती है, जिससे आर्थिक गतिविधियां धीमी पड़ जाती हैं, और विकास दर में गिरावट दर्ज की जाती है।

फ्रीबीज के चक्कर में राज्य सरकारें राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम) की सीमा का उल्लंघन करती हैं राज्य के वित्तीय स्वास्थ्य के लिए घातक होता। एफआरबीएम अधिनियम के तहत सुनिश्चित किया जाता है कि राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा, कर राजस्व और कुल बकाया देनदारियां निर्धारित सीमा से अधिक नहीं हों। अगर ऐसा करना जरूरी हो तो वह सिर्फ आपदा की स्थिति में ही किया जाना चाहिए। सुब्बाराव का कहना है कि फ्रीबीज के कारण कुछ राज्य सरकारें एफआरबीएम की सीमा का उल्लंघन कर रही हैं, जिसके कारण कर्ज के दलदल में फंसती जा रही हैं। इसलिए राज्य सरकारों और केंद्र सरकार को वित्तीय अनुशासन बनाकर रखना चाहिए। सुब्बाराव के अनुसार मोदी सरकार को फ्रीबीज रोकने के मुद्दे पर राजनीतिक दलों के बीच सहमति बनानी चाहिए और जरूरत पड़ने पर मामले में 'श्वेत पत्र' पेश करने से भी नहीं हिचकिचाना चाहिए। इस मुद्दे पर सभी राजनीतिक दलों के बीच गहन बहस की जानी चाहिए और फ्रीबीज रोकने के लिए ठोस नीति बना कर जल्द से जल्द उसे अमल में लाना चाहिए। जनता को मुफ्त उपहारों की लागत और लाभ के बारे में भी जागरूक किया जाना चाहिए। सरकार की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि इस बारे में लोगों को कैसे शिक्षित करती है ? भारत जैसे गरीब देश में यह भी सरकार की जिम्मेदारी है कि सबसे कमजोर वर्ग को हर तरह का सुरक्षा कवच प्रदान करे और यह भी सुनिश्चित करे कि गरीब या सुविधाओं से वंचित जनता बिना फ्रीबीज के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सके।

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने हाल में लोक सभा में श्वेत पत्र के माध्यम से संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए या संप्रग) सरकार के 10 वर्षों के कार्यकाल की नाकामियों और मोदी सरकार के 10 सालों के कार्यकाल की उपलब्धियों को

जनता के समक्ष रखा था ताकि जनता तय कर सके कि किस सरकार ने अपने कार्यकाल के दौरान जनता, समाज और देश की बेहतरी के लिए शिद्दत से प्रयास किया है। आम तौर पर 'श्वेत पत्र' के जरिए सरकार कानून पेश करने से पहले नीतिगत प्राथमिकताएं प्रस्तुत करती है, और इसकी मदद से विवादास्पद नीतिगत मुद्दों पर जनता की राय ली जाती है।

उल्लेखनीय है कि सुब्बाराव से पहले भी मामले में सर्वोच्च अदालत सरकार को फ्रीबीज बंद करने के लिए नसीहत दे चुकी है। सर्वोच्च अदालत ने बीते महीनों में केंद्र सरकार से पूछा था कि क्या चुनाव अभियानों के दौरान फ्रीबीज के लिए वादा करना और सत्ता में आने के बाद उसे अमलीजामा पहनाना आर्थिक रूप से व्यवहार्य है? कुछ समय पहले निर्वाचन आयोग ने भी राजनीतिक दलों द्वारा फ्रीबीज देने के लिए वादा करने और फिर सत्ता में आने के बाद फ्रीबीज पर खर्च करने की बढ़ती प्रवृति पर सवाल उठाया था? फ्रीबीज से अर्थव्यवस्था का बुनियादी ढांचा कमजोर होता है, और सरकार को अपनी व्यय प्राथमिकताओं में से विकास की प्राथमिकता से किनारा करना पड़ता है। राज्यों के राजस्व के स्रोत सीमित होते हैं। इसलिए राज्यों का बजट फ्रीबीज के कारण बेपटरी हो जाता है, और विकासात्मक कार्यों को पूरा करने के लिए सरकार को कर्ज लेना पड़ता है। आज कई राज्य सरकारें कर्ज में तय सीमा से अधिक डूबी हुई हैं। पंजाब ने सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) का 53.3 प्रतिशत कर्ज ले रखा है, जो कर्ज लेने वाले सभी राज्यों से सबसे ज्यादा है। केंद्रीय बैंक के अनुसार किसी भी राज्य पर उसकी जीएसडीपी के 30 प्रतिशत से अधिक कर्ज नहीं होना चाहिए। पंजाब के अलावा अरुणाचल प्रदेश, बिहार, गोवा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, राजस्थान और पश्चिम बंगाल पर भी उनके जीएसडीपी से बहुत ज्यादा कर्ज है, और रिजर्व बैंक इस पर चिंता जता चुका है।

फ्रीबीज स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव को प्रभावित करती है, जिससे सही प्रतिनिधि संसद या विधानसभा में नहीं जा पाते। फलतः जनता, समाज और देश के लिए समीचीन कानून का निर्माण नहीं हो पाता। मुफ्त बिजली या दूसरी सुविधाएं मिलने पर जनता सुविधाओं का बेजा इस्तेमाल करती है, जिससे संसाधनों की बेवजह बर्बादी होती है। यूरोप के कुछ देश फ्रीबीज संस्कृति की वजह से ही आर्थिक संकट से जूझ रहे हैं। पड़ोसी देश श्रीलंका और पाकिस्तान का भी फ्रीबीज संस्कृति के कारण बुरा हाल है। भारत में आज भी कई ऐसे क्षेत्र हैं, जहां अपेक्षित विकास नहीं हुआ है। लिहाजा, उपेक्षित क्षेत्र में विकास को सुनिश्चित करने के लिए सब्सिडी देना जरूरी है। उदाहरण के तौर पर अक्षय ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए घरों की छतों या दूसरी जगहों पर सौर पैनल स्थापित करने के लिए सब्सिडी दी जा रही है। यह नियम भी बनाना चाहिए कि बजट का कितना प्रतिशत जन-कल्याणकारी कार्यों पर खर्च किया जाए और यह भी सुनिश्चित किया जए कि जिन जन-कल्याणकारी योजनाओं पर पैसे खर्च किए गए हैं, क्या उससे आम जनता लाभान्वित हुई है? अगर किसी जन-कल्याणकारी योजना से जनता को कोई लाभ नहीं हुआ है, या उनके जीवन स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ है, तो वैसी योजनाओं को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। जनता को भी आत्मावलोकन करने की जरूरत है कि फ्रीबीज से उन्हें लाभ हो रहा है, या नहीं? यदि नहीं, तो उन्हें ऐसे लोक-लुभावन वादों के झांसे में नहीं आना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:29-04-24

मालदीव विस्तार

संपादकीय

मालदीव जलवायु परिवर्तन के परिणामों के चलते पृथ्वी पर सबसे संवेदनशील देशों में से एक है। मालदीव की सरकार जलवायु संबंधी मुद्दों पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर एक मजबूत आवाज रही है, पर वह घरेलू स्तर पर पर्यावरण संरक्षण की नीतियों की लगातार अवहेलना कर रही है। यह दुख और चिंता की बात है। जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र का स्तर बढ़ रहा है, मालदीव जैसे निचले द्वीप राष्ट्रों को खतरे का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे देशों के लिए समाधान है, समुद्र तल से तलछट को स्थानांतरित कर नई भूमि बनाना । इस काम को समुद्र किनारे मिट्टी भरकर अंजाम दिया जाता है और मालदीव यदा-कदा यही कर रहा है। मालदीव अपने अस्तित्व को बचाने के लिए यह प्रयास कर रहा है, पर पर्यावरण की दृष्टि से स्वयं उसके लिए यह प्रयास घातक सिद्ध हो सकता है। मालदीव को सोच-विचार के साथ ही आगे बढ़ना चाहिए। उसका अस्तित्व महत्वपूर्ण है और बड़े पैमाने पर उसके स्थायित्व के लिए दुनिया को चिंतित होना चाहिए। यह एक बड़ी सोच का विषय होना चाहिए कि जब किसी देश का भूगोल मिट जाएगा, तब उसके सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक अस्तित्व को कैसे बचाया जा सकेगा ?

गौर करने की बात है कि मालदीव अंतरराष्ट्रीय पर्यटन से होने वाली आय पर निर्भर है और जैसे-जैसे उसके द्वीपों पर अस्तित्व का संकट बढ़ेगा, वैसे-वैसे पर्यटन से उसकी कमाई भी घटती चली जाएगी। इसलिए मालदीव की चेष्टा स्वाभाविक है कि वह अपने द्वीपों का विस्तार करे, पर वहां विकास परियोजनाओं को आगे बढ़ाते समय स्थानीय समुदायों की चिंताओं की उपेक्षा की गई है। यह उन निवासियों के लिए बहुत हानिकारक है, जो पहले से ही मौसम के बदलते मिजाज, समुद्र के बढ़ते स्तर और बाढ़ के प्रभाव से जोखिम में हैं। मालदीव के सरकारी अधिकारी सफाई पेश करते हैं कि बढ़ती आबादी और सीमित भूमि वाले देश के लिए भूमि पुनर्ग्रहण आवश्यक है। योजनाबद्ध उद्देश्य - पर्यटक रिसॉर्ट्स और गेस्टहाउसों के लिए बंदरगाह, हवाई अड्डे और कृत्रिम द्वीप देश के आर्थिक विकास के लिए अहम हैं। हालांकि, मालदीव के अनेक लोगों में नाराजगी भी है। खेती, मछली पकड़ने और जमीन की नमी पर असर साफ दिख रहा है। आजीविका भी प्रभावित हो रही है। खराब ढंग से हो रहे इस विकास ने द्वीपों से प्राकृतिक संसाधन छीनने शुरू कर दिए हैं। ताजे पानी, सार्वजनिक भूमि और फलों के पेड़ों जैसे प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच से लोग वंचित होने लगे हैं।

सरकार ने पर्यावरण नियामकों की अनदेखी की है और एक नया हवाई अड्डा बनाने के लिए द्वीप के 70 प्रतिशत मैंग्रोव या जल संपदा को दफना दिया है। इतना ही नहीं, जिन लोगों की आजीविका प्रभावित हुई है, उन्हें पांच साल बाद भी मुआवजा नहीं दिया गया है, इससे लोगों में भी नाराजगी है। यह मालदीव का आंतरिक मामला है और किसी दूसरे देश को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, पर आखिर ऐसे देशों के पास बचने के क्या विकल्प हैं ? दुनिया में जब समुद्री जल स्तर बढ़ेगा, तब बारी-बारी अनेक देश डूबेंगे, ऐसे में, क्या हमारे पास कोई योजना है ? क्या संयुक्त राष्ट्र ने इस बारे में कुछ सोच रखा है ? जिन देशों का अस्तित्व खतरे में है, उन्हें तो खासतौर पर सजग रहना चाहिए। पर्यावरण संबंधी नियम-कायदों का युद्ध स्तर पर पालन करना चाहिए, ताकि दूसरे देशों को भी प्रेरणा मिले।

Date:29-04-24

अमीरों की संपत्ति गरीबों में बांटने की मंशा

आलोक जोशी, (वरिष्ठ पत्रकार)

कहां तो तय था चरागां हर एक घर के लिए,
कहां चराग मयस्सर नहीं शहर के लिए

दुष्यंत की ये पंक्तियां यहां सही बैठती हैं या नहीं, इस पर लंबी बहस हो सकती है, मगर इस वक्त देश में जो बहस चल रही है, उसमें इन पंक्तियों का ही नहीं, किसी भी कविता या गजल का इस्तेमाल हो सकता है। यहां बात सिर्फ इतनी है कि एक तरफ तो देश को आगे बढ़ाने, तरक्की तेज करने, शेयर बाजार में जबर्दस्त उछाल और पूरी दुनिया में भारत का डंका बजने की कहानी चल रही है, जबकि दूसरी तरफ अचानक औरतों के मंगल सूत्र छिनने से लेकर हमारी आपकी विरासत पर टैक्स लगने जैसी बातें भी चुनावी मैदान के बीचोबीच घमासान का कारण बन चुकी हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस पर जबर्दस्त निशाना साधा और चुनाव के मौसम में ही नजर आने वाले प्रवासी कांग्रेस के नेता सैम पित्रोदा ने उन्हें और उनकी पार्टी को मानो इसके लिए मसाला भी दे दिया। अब दोनों तरफ से जबर्दस्त गोलाबारी चल रही है। इस चक्कर में एक बात तो यह हुई कि जिन लोगों को पता भी नहीं था कि कांग्रेस के चुनाव घोषणापत्र में लिखा क्या है, वे भी ज-खोजकर उसे पढ़ने में जुट गए हैं। सैम पित्रोदा ने क्या कहा? राहुल गांधी के बयान से जोड़कर उसे देखने पर क्या तस्वीर बनी ? प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस पर क्या-क्या आरोप लगाए, इस पर वाद-विवाद प्रतियोगिता हो सकता है कि आगे लंबे समय तक जारी रहे, मगर सवाल यह है कि विरासत पर टैक्स लगाने से क्या अमीर-गरीब के बीच की खाई पाटी जा सकती है?

यह कोई अनूठा विचार नहीं है। सैम पित्रोदा ने तो अमेरिका का उदाहरण दिया था कि वहां एक सीमा के बाद विरासत में मिलने वाली संपत्ति पर 55 प्रतिशत टैक्स लगता है। आर्थिक सहयोग संगठन ओईसीडी में ऐसे 24 देश हैं, जहां किसी न किसी रूप में विरासत पर टैक्स लगता है। सब जगह टैक्स की दरें अलग- अलग हैं। पीडब्ल्यूसी के अनुसार, फ्रांस में 60 प्रतिशत और जापान में 55 फीसदी टैक्स है, जबकि जर्मनी और दक्षिण कोरिया में टैक्स की दर 50 प्रतिशत है। उधर, अमेरिका और ब्रिटेन 40 फीसदी की दर से कर वसूलते हैं। हालांकि, ओईसीडी के अनुसार, उसके सदस्य देशों की 52 प्रतिशत संपत्ति मात्र दस फीसदी लोगों के हाथों में सिमटी हुई है। हालांकि, साथ में वह यह भी बताता है कि विरासत के टैक्स से इन देशों में नाममात्र की कमाई होती है।

भारत में यह मसला और भी पेचीदा है, क्योंकि यहां यह विचार पहली बार नहीं आया है। 1953 में संसद बाकायदा कानून पास करके एस्टेट ड्यूटी या मृत्यु कर लगाने का फैसला किया था। तब एक लाख रुपये से ऊपर की संपत्ति पर टैक्स लगाने की व्यवस्था थी । उस वक्त यह भी बहुत बड़ी रकम होती थी और इस पर टैक्स शुरू होता था 7.5 फीसदी से। मगर 20 लाख रुपये की संपत्ति के मालिक की मृत्यु पर 85 फीसदी तक टैक्स लगता था । तर्क यही था कि एक सीमा से ऊपर कमाने वालों को अपनी संपत्ति में से वापस समाज को हिस्सा देना चाहिए। मगर तब इस टैक्स को बचाने के लिए तमाम जुगत व जुगाड़ भी शुरू हुए और इस टैक्स का विरोध भी। तब भी 1985 तक यह जारी रहा। राजीव

गांधी की सरकार में वित्त मंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने फैसला किया कि इस टैक्स की वसूली में जितना झंझट और खर्च है, उसके मुकाबले न तो वसूली हो रही है और न ही इससे गैर-बराबरी खत्म करने का उद्देश्य पूरा हो रहा है। इसलिए यह टैक्स खत्म कर दिया गया।

उसके बाद भी बार-बार इस टैक्स की वापसी के सुझाव आते रहे हैं। 2012 में पी चिदंबरम इसके पक्ष में बोल रहे थे, तो उसके बाद एनडीए सरकार के वित्त मंत्री अरुण जेटली और वित्त राज्य मंत्री जयंत सिन्हा, दोनों ही इसके पक्ष में तर्क देते रहे। हालांकि, आज भाजपा कांग्रेस पर इसके लिए हमलावर है, लेकिन अब उसके ही अपने नेताओं के पुराने बयान निकालकर दिखाए जाने लगे हैं। चूंकि, कांग्रेस घोषणापत्र जारी करते समय राहुल गांधी ने यह कहा था कि देश में किसके पास कितनी संपत्ति है, इसका एक सर्वे कराया जाएगा, तो सैम पित्रोदा के बयान के साथ जोड़कर यह मानना मुश्किल नहीं है कि उसके बाद अमीरों की संपत्ति लेकर गरीबों में बांटने का इरादा है।

ऐसे में, सवाल यह भी है कि दुनिया के जिन देशों में ऐसा टैक्स लग रहा है, क्या वहां आर्थिक समानता है? ब्रिटेन में तो इस वक्त मुद्दा गरम है कि क्या ऋषि सुनक की सरकार चुनाव से पहले विरासत पर टैक्स कम करने जा रही है? उनकी पार्टी चुनाव सर्वेक्षणों में कमजोर दिख रही है और यह संभावना बढ़ रही है कि वोटरों को लुभाने के लिए ऐसा कोई लोक-लुभावन फैसला हो सकता है। अमेरिका, जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों में इस टैक्स की ऊंची दरों के बावजूद क्या गरीब और अमीर की खाई कम हुई है? इसका जवाब कोई भी हां में नहीं दे सकता।

मगर किसी भी संवेदनशील और जागृत समाज को इस सवाल से लगातार दो-चार होते रहना पड़ता है कि लोग तरक्की की दौड़ में पीछे छूटते जाते हैं, उन्हें सहारा देने के लिए क्या किया जाए? क्या मुफ्त राशन, मुफ्त घर और मुफ्त बिजली-पानी देते रहना ही काफी है या कुछ ऐसा करना होगा कि उन्हें रेस में बराबरी के मौके मिल सकें? आय कर हो या संपत्ति करया विरासत पर कर, सबके पीछे भावना तो यही रही, पर कामयाबी मिलना आसान नहीं है। जिस दौर में भारत में मृत्यु कर लगा करता था, उस दौर में अमीरों को संपत्ति कर या वेल्थ टैक्स भी देना पड़ता था, जिनसे कोई खास फायदा नहीं हुआ, क्योंकि टैक्स इतना भारी था कि उसे बचाने के लिए कोशिश करना काफी मुनाफे का सौदा था। इसीलिए, ऐसे जुगाड़ और जतन करने का एक पूरा कारोबार भी खड़ा हो गया।

अभी 'इन्हेरिटेन्स टैक्स' पर विवाद के बाद उद्योगपति हर्ष गोयनका ने एक्स पर पोस्ट में मार्के की बात लिखी है। उनका कहना है कि सारे व्यापारी/ कारोबारी इस टैक्स पर चिंतित थे। सैम पित्रोदा का शुक्रिया कि उन्होंने बात उठाई और सरकार का शुक्रिया कि उसने इतने जोर-शोर से इसका विरोध किया। हालांकि, उन्होंने चुटकी भी ली कि टैक्स बचाने का इंतजाम करने में लगी सीए बिरादरी को बड़े बिजनेस का नुकसान हो गया।